जैन भक्तिकाव्य

—प्रो. (डॉ.) वीरसागर जैन

गुणवत्ता, परिमाण, विविधता आदि अनेक दृष्टियों से जैन वाङ्मय का भारतीय वाङ्मय में विशिष्ट स्थान है। भक्तिकाव्य भी इसका अपवाद नहीं है। जैन कवियों ने प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में, सभी प्रकार की काव्यशैलियों में विपुल मात्रा में उच्चकोटि के भक्तिकाव्य की रचना की है, जिस सबका उल्लेख यद्यपि इस लघु निबन्ध में शक्य नहीं है, तथापि कुछ कहते हैं।

जैन भक्तिकाव्य साहित्य के आदि काल से ही अनेकानेक रूपों में उपलब्ध होता है। यथा– मंगलाचरण, भक्ति, स्तुति, स्तोत्र, पूजा-विधान, आरती, पद, अष्टक, दशक, पच्चीसी, बत्तीसी, चालीसा, पचासा, शतक इत्यादि। इन सभी रूपों का मुख्य विषय अपने आराध्य की गुणस्तुतिरूप भक्ति ही है, अतः ये सभी वस्तुतः भक्तिकाव्य के विविध रूप हैं।

इनमें सर्वप्रथम तो, जैन-ग्रन्थों के प्रारम्भ में मंगलाचरण हेतु रचे गए छन्द जैन भक्तिकाव्य के उत्कृष्ट उदाहरण माने जाने चाहिए। अत्यन्त सारगर्भित होने से ये छन्द बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं। कतिपय मंगलाचरण-छन्द तो ऐसे हैं, जो आगे चलकर हैं। न केवल अनेक भक्तिकाव्यों के, बल्कि दर्शन एवं न्यायशास्त्र के ग्रन्थों के भी मूलाधार बने हैं। इनमें 'षट्खण्डागम' और 'तत्त्वार्थसूत्र' के निम्नलिखित मंगलाचरण-छन्द विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं–

1. **णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।**
   णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥[1]

2. **मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम्।**
   ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये॥[2]

उक्त दोनों मंगलाचरण-काव्य सम्पूर्ण जैन भक्तिकाव्य के मूल-स्रोत तो प्रतीत होते ही हैं, जैन-भक्ति की समूची अवधारणा को स्पष्ट करने में भी बड़े समर्थ लगते हैं। इनके आधार पर जैन वाङ्मय में अनेक ग्रन्थ लिखे गए। उदाहरणार्थ–'तत्त्वार्थसूत्र' के मंगलाचरण को आधार बनाकर आचार्य समन्तभद्र ने 'आप्तमीमांसा', आचार्य अकलंक ने 'अष्टशती' एवं आचार्य विद्यानंदी ने 'अष्टसहस्री' व 'आप्तपरीक्षा' आदि अनेक महान ग्रन्थों की रचना की।

मंगलाचरण के अतिरिक्त भक्तियों के नाम से भी जैनवाङ्मय में विशाल भक्ति-काव्य रचा गया है। इनमें आचार्य कुन्दकुन्द (प्रथम शताब्दी) और आचार्य पूज्यपाद (पाँचवीं शताब्दी) जैसे धुरन्धर आचार्यों की भक्तियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आज भी हजारों साधु और श्रावक इन भक्तियों का नित्य पाठ करते हैं। भावगांभीर्य और शिल्प –दोनों ही दृष्टियों से ये भक्तियाँ सम्पूर्ण भारतीय भक्ति-काव्य में अपना बेजोड़ स्थान रखती हैं।

इन भक्तियों के शीर्षक इस प्रकार हैं– सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति, योगिभक्ति, निर्वाणभक्ति, आचार्यभक्ति, पंचमहागुरुभक्ति, वीरभक्ति, तीर्थंकरभक्ति, शान्तिभक्ति, समाधिभक्ति, नन्दीश्वरभक्ति और चैत्यभक्ति।[3]

आचार्य कुन्दकुन्द की भक्तियाँ प्राकृत भाषा में हैं, जबकि आचार्य पूज्यपाद की भक्तियाँ संस्कृत में। आचार्य कुन्दकुन्द और आचार्य पूज्यपाद के अतिरिक्त कतिपय अन्य आचार्यों ने भी कुछ भक्तियाँ लिखी हैं। जैसे– श्रुतसागरसूरि (16वीं शती) की सिद्धभक्ति।[4]

मंगलाचरण और भक्तियों के अतिरिक्त 'स्तोत्र' के नाम से भी विशाल जैन-भक्तिकाव्य उपलब्ध है। जैन स्तोत्र-साहित्य का प्रारम्भ वैसे तो प्राकृतभाषा में हो चुका था और 'जय तिहुअण', 'उवसग्गहरं', 'भयहरं' आदि अनेक स्तोत्रों की रचना हो चुकी थी, परन्तु संस्कृत भाषा में आकर तो जैन स्तोत्र-साहित्य का अद्भुत विकास हुआ। डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री के अनुसार संस्कृत भाषा में 1000 से अधिक जैन स्तोत्र लिखे गये हैं।[5]

संस्कृत-जैन-स्तोत्र-साहित्य के आद्यरचनाकार आचार्य समन्तभद्र (दूसरी शताब्दी) माने जाते हैं। आचार्य समन्तभद्र के स्तोत्र जैन-भक्तिकाव्य के समूचे दर्शन को बड़े ही स्पष्ट शब्दों में और तार्किक रीति से प्रस्तुत करने में अत्यन्त समर्थ हैं। स्तुति, स्तुत्य, स्तोता, स्तुतिफल, स्तुतिविधि आदि सभी विषयों पर आचार्य समन्तभद्र ने बड़े ही सटीक विचार अपने स्तोत्रों में अभिव्यक्त किए हैं। भाषा एवं कला दोनों ही दृष्टियों से आचार्य समन्तभद्र के स्तोत्र बड़े उत्कृष्ट हैं।

आचार्य समन्तभद्र के इन स्तोत्रों के सम्बन्ध में डॉ. प्रेमसागर ने लिखा है– ''आचार्य समन्तभद्र के 'स्वयम्भू-

स्तोत्र' तथा 'स्तुति-विद्या' समूचे भारतीय भक्ति-साहित्य के जगमगाते रत्न हैं। हृदय की भक्तिपरक ऐसी कोई धड़कन नहीं, जो इनमें सफलता के साथ अभिव्यक्त न हुई हो। भाव और कला का ऐसा अनूठा समन्वय भारत के किसी अन्य स्तोत्र में दृष्टिगोचर नहीं होता है।[6]

आचार्य समन्तभद्र के स्तोत्रों में 'स्वयम्भूस्तोत्र' या 'बृहत्स्वयम्भूस्तोत्र' सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इसमें कुल 143 संस्कृत-छन्दों में ऋषभादि चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति की गयी है। स्तुति के माध्यम से भी वस्तुतः जैन चिन्तन को और साथ में जैनचिंतन के मूलाधार तत्त्व अनेकान्त-स्याद्वाद को भी यहाँ गंभीरता से स्पष्ट किया है।

आचार्य समन्तभद के इस स्तोत्र का परवर्ती जैन भक्तिकाव्य पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। पच्चीसों कृतियाँ तो 'स्वयम्भूस्तोत्र' के नाम से ही लिखी गयी हैं। इसके अतिरिक्त इस स्तोत्र के विषय एवं शैली का अनुकरण करते हुए तो विविध भाषाओं और विविध कालखण्डों में आज तक शताधिक कृतियों की रचना हुई है।

आचार्य समन्तभद्र के 'स्वयम्भूस्तोत्र' के अतिरिक्त संस्कृत-जैन-स्तोत्र-साहित्य में कतिपय निम्नलिखित स्तोत्र अत्यधिक प्रचलित हैं–

1. भक्तामरस्तोत्र (आचार्य मानतुंग, सातवीं शती)
2. कल्याणमन्दिरस्तोत्र (आचार्य सिद्धसेन अपर नाम कुमुदचन्द्र, सातवीं शती)
3. विषापहारस्तोत्र (महाकवि धनंजय, आठवीं शती)
4. जिनसहस्रनामस्तोत्र (आचार्य जिनसेन, आठवीं शती)
5. एकीभावस्तोत्र (आचार्य वादिराजसूरि, ग्यारहवीं शती)
6. पार्श्वनाथस्तोत्र (आचार्य वादिराजसूरि, ग्यारहवीं शती)
7. महावीराष्टकस्तोत्र (कविवर पं. भागचन्द, उन्नीसवीं शती)

इन स्तोत्रों का हजारों जैन साधक प्रायः प्रतिदिन पाठ करते हैं और इसलिए जैन भक्ति-काव्य-संग्रह की प्रायः प्रत्येक पुस्तक में ये संकलित पाये जाते हैं। इन स्तोत्रों पर संस्कृत, हिन्दी आदि भाषाओं में टीकाएँ तो लिखी ही गयी हैं, उनका हिन्दी, मराठी, कन्नड़, गुजराती, अंग्रेजी आदि प्रायः सभी बहु प्रचलित भाषाओं में गद्यानुवाद और पद्यानुवाद भी किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त इनकी मधुर स्वरों में ऑडियो-वीडियो कैसेट्स और सीडीज भी बनी हैं।

इन स्तोत्रों की लोकप्रियता का एक प्रमाण यह है कि सामान्य लोग इनका असली नाम तक नहीं जानते, फिर भी इन्हें अपने ही रखे हुए नाम के द्वारा बहुत अधिक पढ़ते-सुनते हैं। जैसे 'भक्तामरस्तोत्र' का वास्तविक नाम तो 'ऋषभदेव-स्तोत्र' है, किन्तु उसका प्रथम पद 'भक्तामर' है– 'भक्तामर प्रणतमौलिमणिप्रभाणाम्', अतः उसका नाम जन-साधारण में 'भक्तामरस्तोत्र' ही प्रचलित हो गया है। इसी प्रकार देवागम-स्तोत्र, कल्याणमन्दिर-स्तोत्र और एकीभाव-स्तोत्र का भी मूल नाम तो क्रमशः आप्तमीमांसा, पार्श्वनाथस्तोत्र और चतुर्विंशतितीर्थंकरस्तोत्र है, किन्तु जनसाधारण में उनके नाम उनके प्राथमिक पदों के आधार पर ही उपर्युक्तानुसार पड़ गये हैं। ऐसी ही स्थिति और भी अनेक स्तोत्रों की है।

उक्त सभी जैन स्तोत्रों का मूलतः अध्ययन करने के लिए विभिन्न स्थानों से प्रकाशित निम्नलिखित स्तोत्र-संग्रहों और जिनवाणी-संग्रहों को भी देखना चाहिए। यथा–

1. जैन स्तोत्र समुच्चय, सम्पादक–मुनि चतुरविजय, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, वि.सं. 1984.
2. जैन स्तोत्र पाठ संग्रह, सम्पादक–ब्र. धर्मचन्द्र जैन, भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत्परिषद्, गुलाबवाटिका, लोनी रोड, दिल्ली, सन् 2003
3 ज्ञानपीठ पूजांजलि, सम्पादक–डॉ. ए. एन. उपाध्ये एवं पं. फूलचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
4. पूजन-पाठ-प्रदीप, मूल सम्पादक–पं हीरालाल जैन कौशल, प्रकाशक– शैली, श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, पुरानी सब्जी मण्डी, दिल्ली-7
5. वृहज्जिनवाणी संग्रह, सम्पादक–डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

उक्त स्तोत्रों में भी प्रसिद्धि की दृष्टि से आचार्य मानतुंग का 'भक्तामर स्तोत्र' विशेष रूप से विख्यात है, क्योंकि इसे जैनधर्म के दिगम्बर और श्वेताम्बर –दोनों ही सम्प्रदायों में बड़ी भक्ति के साथ पढ़ा-पढ़ाया जाता है। इसमें

श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनुसार 44 और दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुसार 48 वसन्ततिलका छन्द हैं, जो भावविभोर करने की अद्‌भुत क्षमता रखते हैं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित छन्द देखिए–

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः॥

इसका पद्यानुवाद इस तरह है–

धूमरहित बाती गत नेह, परकाशै त्रिभुवन-घर एह।
वातगम्य नाहीं परचण्ड, अपर दीप तुम बलौ अखण्ड॥

मंगलाचरण, भक्ति और स्तोत्रों के अतिरिक्त जैन भक्तिकाव्य में पूजाओं का भी बड़ा भण्डार है। सभी तीर्थंकरों की तो पृथक्-पृथक् और सामूहिक रूप से अनगिनत पूजाएँ लिखी ही गयी हैं, सिद्ध भगवन्तों, सामान्य केवलियों, विविध तीर्थ-क्षेत्रों, जिनवाणी या सरस्वती, निर्ग्रन्थ मुनिराजों और दशलक्षण, सोलहकारण, रक्षाबन्धन आदि पर्वों तक की सैकड़ों पूजाएँ हैं। देव-शास्त्र-गुरु, पंचपरमेष्ठी आदि नामों से सामूहिक पूजाएँ भी बड़ी संख्या में जैन कवियों ने लिखी हैं। जैन भक्तिकाव्य में उपलब्ध प्राकृत, संस्कृत व हिन्दी की सभी जैन पूजाओं की कुल संख्या लगभग पाँच हजार होगी।

प्रत्येक पूजा के मुख्यतः 5 भाग होते हैं– स्थापना, अष्टक, पंचकल्याणक, जयमाला और आशीर्वचन। स्थापना में स्तुत्य या पूज्य का आह्‌वानन करके उसे अपने हृदय में स्थापित किया जाता है। अष्टक में उसी पूज्य को जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल –इन आठ द्रव्यों से पृथक-पृथक् पूजा करने के बाद इन सबका मिश्रणरूप अर्घ्य चढ़ाकर पूजा की जाती है। 'पंचकल्याणक' वाला भाग केवल 24 तीर्थंकरों की पूजा के लिए ही प्रयोग किया जाता है, जिसमें गर्भकल्याणक, जन्मकल्याणक, तपकल्याणक, ज्ञानकल्याणक और मोक्षकल्याणक इन पंचकल्याणकों से युक्त तीर्थंकर के पृथक्-पृथक् पाँच अर्घ्य चढ़ाए जाते हैं। 'जयमाला' पूजा का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण भाग होता है। इसमें पूज्य का गुणानुवाद तो होता ही है, पर अनेक बार उनके जीवनचरित्र आदि का भी सुन्दर वर्णन उपलब्ध होता है। कभी-कभी जैनदर्शन के तत्त्वज्ञान का गूढ़ व्याख्यान भी इन जयमालाओं में उपलब्ध होता है। यथा–

सुमति तीन सौ छत्तीसों, सुमति भेद दरशाय।
सुमति देहु विनती करें, सुमति विलम्ब कराय॥
पंच परावरतन हरन, पंच सुमति तिस दैन।
पंच लब्धि दातार के, गुण गाऊँ दिन रैन॥[7]

कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त दोहों का साहित्यिक सौन्दर्य भी मनोमुग्धकारी है। पूजा के अन्तिम भाग 'आशीर्वचन' में भक्तों एवं जगत् के सभी जीवों के कल्याण की शुभकामना की जाती है। जैन भक्तिकाव्य में पूजाकाव्य का स्थान भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है। लाखों श्रावक-श्राविकाएँ प्रतिदिन अनिवार्य रूप से जैनमन्दिरों में जाकर शुद्ध वस्त्र पहनकर, अष्ट द्रव्य से थाल सजाकर उत्साहपूर्वक गा-गाकर इन पूजाओं को पढ़ते हैं। डॉ. दयाचन्द्र जैन साहित्याचार्य की कृति 'जैन पूजाकाव्य : एक चिन्तन' आदि ग्रन्थ इस विषय में बड़े सहायक सिद्ध होंगे।[8]

जैन-पूजाकाव्य के अन्तर्गत बृहत्पूजाओं के निर्माण की भी परम्परा प्रचलित रही है, जिसे 'मण्डल-विधान' के नाम से जाना जाता है। जैन कवियों ने सैकड़ों मण्डलविधान अलग-अलग तरह के लिखे हैं, इनमें से अनेक विधान तो ऐसे हैं जिनका पाठ एक दिन में पूरा हो ही नहीं सकता, उसके लिए कई दिनों तक कुछ को करने में तो आठ-दस दिनों तक पूजा चलानी होती है। कतिपय सुप्रसिद्ध जैन पूजन-मण्डल-विधानों के नाम इस प्रकार हैं–

1. सिद्धचक्र मण्डल विधान
2. इन्द्रध्वज मण्डल विधान
3. यागमण्डल विधान
4. चौंसठ ऋद्धि मण्डल विधान

मंगलाचरण, भक्ति, स्तोत्र, पूजा एवं विधान के अतिरिक्त जैन भक्तिकाव्य में 'स्तुति' या 'भजन' के रूप में भी हजारों पद आज उपलब्ध हैं। हिन्दी (ब्रज) भाषा में तो इन पदों का लेखन इतनी विपुल मात्रा में हुआ है कि उसका एक विशाल कोश-ग्रन्थ ही अलग से प्रकाशित किया जा सकता है। भावगाम्भीर्य और पदलालित्य दोनों ही दृष्टियों से सभी समीक्षकों ने इन पदों की मुक्त कण्ठ से सराहना की है। उदाहरणार्थ एक पद द्रष्टव्य है–

निरखत जिनचन्द्र-वदन, स्व-पद-सुरुचि आई॥
प्रगटी निज आन की, पिछान ज्ञान-भान की,
कला उद्योत होत, काम-यामिनी पलाई॥
सास्वत आनन्द-स्वाद, पायो विनस्यो विसाद,
आन में अनिष्ट इष्ट, कल्पना नसाई॥
साधी निज साधकी, समाधि मोहव्याधि की,
उपाधि को विराधि के, आराधना सुहाई॥
धन दिन छिन आज सुगुन, चिन्ते जिनराज अबै,
सुधरे सब काज 'दौल', अचल रिद्धि पाई॥[9]

हिन्दी-पदों के रचयिताओं में पं. बनारसीदास, भूधरदास, द्यानतराय, भगवतीदास, दौलतराम, भागचन्द आदि कवियों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

अब यहाँ संक्षेप में जैनधर्म के भक्ति सिद्धान्त को समझने का भी कुछ प्रयत्न किया जाता है–

जैनधर्म के भक्ति सिद्धान्त को समझने के लिए निम्नलिखित चार विषयों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक माना गया है–

1. आराध्य का स्वरूप (स्तुत्य)
2. भक्त का स्वरूप (स्तोता)
3. भक्ति का स्वरूप (स्तुति)
4. भक्ति का फल (स्तुति-फल)

इन चारों के स्वरूप को संक्षेप में स्पष्ट करने वाला एक सारग्राही श्लोक आचार्य जिनसेन कृत 'जिनसहस्रनाम' स्तोत्र में उपलब्ध होता है, जो इस प्रकार है–

स्तुतिः पुण्यगुणोत्कीर्तिः, स्तोता भव्यः प्रसन्नधीः।
निष्ठितार्थो भवांस्तुत्यः, फलं नैश्रेयसं सुखम्॥[10]

अर्थ– भगवान के पवित्र गुणों का कीर्तन करना 'स्तुति' है, प्रसन्न बुद्धि वाला भव्य जीव 'स्तोता' है, पूर्णतया कृतकृत्य वीतराग-सर्वज्ञ परमात्मा 'स्तुत्य' है और मोक्षसुख की प्राप्ति 'स्तुति-फल' है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैनधर्म के अनुसार स्तुत्य (आराध्य) तो केवल एक वही है जो मुक्त (जन्म-मरण से रहित) एवं पूर्णतया शुद्ध-बुद्ध अर्थात् वीतराग-सर्वज्ञ परमात्मा है, क्योंकि स्तुति का प्रयोजन (फल) मोक्ष स्वयं भी पूर्ण शुद्ध-बुद्ध हो जाना है।[11]

इस दृष्टि से यद्यपि अर्हन्त-सिद्ध परमात्मा ही वास्तव में स्तुत्य हैं, किन्तु जैन कवियों ने अपने भक्तिकाव्य में इनके अतिरिक्त कतिपय अन्य को भी प्रयोजनवशात् अपनी स्तुति-भक्ति का विषय बनाया है। जैसे–

1. वीतराग-सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी भी स्तुत्य है, क्योंकि वह भी भक्त को शुद्ध-बुद्ध होने का मार्ग समझाती है। जिनवाणी की पूजा भी प्रकारान्तर से जिन भगवान की ही पूजा है। यथा–

   ये यजन्ते श्रुतं भक्त्या ते यजन्तेऽञ्जसा जिनम्।
   न किञ्चिदन्तरं प्राहुराप्ता हि श्रुतदेवताः॥[12]

2. वीतराग-सर्वज्ञ परमात्मा के मार्ग पर तेजी से चलने वाले आचार्य, उपाध्याय, साधु भी स्तुत्य हैं, क्योंकि वे उन्हीं के प्रतिबिम्ब स्वरूप हैं और वे हमें मोक्षमार्ग पर चलने हेतु साक्षात् रूप से प्रेरक सिद्ध होते हैं।
3. जिनचैत्य (प्रतिमा) और जिनचैत्यालय भी स्तुत्य हैं, क्योंकि उनके माध्यम से हम वीतराग-सर्वज्ञ परमात्मा की आराधना सुगमता से कर पाते हैं।

4. तीर्थस्थान भी स्तुत्य हैं, क्योंकि वहाँ पर हमारा उपयोग वीतरागता-सर्वज्ञता की आराधना में विशेष लगता है।

इसी प्रकार कुछ अन्य भी हमारी स्तुति के विषय बने हैं, परन्तु चरम लक्ष्य के रूप में तो पूर्ण शुद्ध बुद्ध जन्म-मरण रहित परमात्मा ही जैन स्तुति का मुख्य विषय है।

दरअसल, जैनदर्शन के अनुसार इस लोक में अनन्त आत्माएँ हैं और वे सभी समान एवं स्वतन्त्र हैं। सभी आत्माएँ अनादिकाल से अशुद्ध स्वर्ण-पाषाण के समान मोह-राग-द्वेषादि विकारों से सहित भी हैं।

ऐसी स्थिति में जो आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र अपनाकर अपने मोह-राग-द्वेषादि विकारों को पूर्णतः नष्ट कर देता हे और पूर्ण शुद्ध-बुद्ध मुक्त हो जाता है, वहीं वास्तव में हमारी चरम स्तुति का विषय होता है, क्योंकि उससे हमें स्वयं भी अपने विकारों को नष्ट कर शुद्ध-बुद्ध बनने की प्रेरणा या शिक्षा मिलती है।[13]

यद्यपि वह शुद्ध-बुद्ध परमात्मा पूर्णतः वीतराग होने से भक्त को शुद्ध-बुद्ध बनने में किसी भी प्रकार की कोई सहायता नहीं करता, किंचित् शिक्षा या प्रेरणा भी साक्षात् रूप से नहीं देता, फिर भी भक्त को सहज ही उनके गुणस्तवन से ऐसी शिक्षा या प्रेरणा मिल जाती है। इसे ही व्यवहार से ऐसा कहा जाता है कि हमें उनसे शिक्षा प्राप्त हुई। यह ठीक उसी प्रकार है, जिस प्रकार कि चन्द्रमा को शीतलताकारी और सन्तापहारी कहा जाता है। वस्तुतः चन्द्रमा जान-बूझकर किसी को शीतलता देता नहीं, उसका सन्ताप दूर करता नहीं, परन्तु जो व्यक्ति उसके आश्रय में जाते हैं, उन्हें अपने आप शीतलता प्राप्त हो जाती है और उनका सन्ताप दूर हो जाता है, अतः ऐसा कहा जाता है कि चन्द्रमा शीतलतादायक और सन्तापहारक है।

जिस प्रकार लोक में जिसे श्रेष्ठ खिलाड़ी बनना हो, उसे सर्वोत्कृष्ट खिलाड़ी के प्रति बहुमान आता है, श्रेष्ठ वक्ता बनना हो तो श्रेष्ठ वक्ता के प्रति बहुमान आता है. श्रेष्ठ लेखक बनना हो तो श्रेष्ठ लेखक के प्रति बहुमान आता है, बड़ा व्यापारी बनना हो तो बड़े व्यापारी के प्रति बहुमान आता है। उसी प्रकार जिसे पूर्ण शुद्ध बुद्ध-मुक्त परमात्मा बनना हो, उसे पूर्ण शुद्ध-बुद्ध मुक्त परमात्मा के प्रति सहज ही बहुमान आता है। यही भक्ति है।

उक्त लौकिक उदाहरणों में तो कोई किसी रूप में हमारी सहायता कर भी सकता है, किन्तु स्वयं के शुद्ध-बुद्ध परमात्मा बनने में परमात्मा हमारी किसी प्रकार से कोई सहायता नहीं करते हैं, कोई प्रेरणा भी नहीं देते हैं। हम तो स्वयं ही उनके उत्तम गुणों की स्मृति से अपने चित्त को पवित्र करते हैं। इस विषय में आचार्य समन्तभद्र का एक श्लोक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है, जो इस प्रकार है–

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाथ विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः, पुनाति चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः॥[14]

अर्थ– हे जिनेन्द्र! तुम वीतराग हो, अतः पूजा से तुम्हें कुछ नहीं होता, तुम वीतद्वेष भी हो, अतः निन्दा से भी तुम्हें कुछ नहीं होता। तथापि तुम्हारे पवित्र गुणों की स्मृति हमारे चित्त को पापरूपी कालिमा से मुक्त कर पवित्र बना देती है।

इसप्रकार स्पष्ट है कि जैनधर्म के अनुसार भगवान पूर्णतः राग-द्वेष-रहित (वीतराग) होते हैं। वे जगत् के कर्ता-धर्ता-हर्ता तो होते ही नहीं, प्रशंसा-निन्दा सुनकर किंचित् राग-द्वेष भी नहीं करते हैं। अतः उन्हें भक्तों का अनुग्रह और दुष्टों का निग्रह करने वाला कहना परमार्थतः सत्य नहीं है।

जैन भक्ति-सिद्धान्त की एक और महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह किसी व्यक्ति-विशेष को अपना स्तुत्य नहीं मानती, अपितु वीतरागतादि गुणों को हो वास्तव में अपना स्तुत्य मानती है। सभी जैन भक्त-कवियों ने इस प्रकार का भाव बारम्बार प्रकट किया है –प्राकृत-संस्कृत भाषाओं में भी और हिन्दी में भी। यथा–

1. **भवबीजाङ्कुरजनना:, रागाद्या: क्षयमपुगता: यस्य।**
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै॥[15]

2. **जिसने राग-द्वेष-कामादिक जीते सब जग जान लिया।**
सब जीवों को मोक्षमार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया॥
बुद्ध-वीर-जिन-हरि-हर-ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो।
भक्तिभाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो॥[16]

जैन धर्म में भक्ति की परिभाषा ही गुणानुराग है–

अर्हदादिगुणानुरागो भक्तिः।[17]

जिन, जिनेन्द्र, अर्हत, अरिहंत आदि भी कोई व्यक्ति-विशेष या उसके नाम विशेष नहीं हैं, अपितु जिस भी जीव ने अपने मोह-राग-द्वेषादि विकारों को या इन्द्रियासक्ति को जीत लिया है और जिन्होंने वीतरागतादि गुणों को प्राप्त कर लेने के कारण पूज्यता को प्राप्त कर लिया है, उसे ही जिन, जिनेन्द्र, अर्हत् या अर्हन्त आदि कहा गया है।

'भक्ति' की परिभाषा में आगत 'गुणानुराग' पद का अर्थ भी वास्तव में उनके गुणों को जानना, पहचानना और उन्हें प्राप्त करने का पुरुषार्थ करना ही समझना चाहिए, क्योंकि जैनधर्म में अन्धभक्ति या कोरी भावुकतापूर्ण भक्ति नहीं होती, अपितु उसमें जागृत विवेक भी होता है और वह किसी न किसी रूप में हमारे मोह-राग-द्वेष को क्षय करने में उपयोगी अवश्य बनता है। आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने भी यही कहा है–

जो जाणदि अरिहंतं, दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं, मोहो खलु जादि तस्स लयं॥[18]

अर्थ– जो अर्हन्त को द्रव्यत्व, गुणत्व और पर्यायत्व के द्वारा जानता है, वह अपने आत्मा को जान लेता है। और उसका मोह अवश्य नष्ट हो जाता है।

अन्त में, निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि–

1. जैन भक्ति सिद्धान्त को समझने के लिए चार विषयों का ज्ञान अनिवार्य है– स्तुत्य, स्तोता, स्तुति एवं स्तुतिफल।
2. जैनधर्म के अनुसार मात्र वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ही स्तुत्य (उपास्य) है, अन्य जो मोह राग-द्वेष-अज्ञान आदि विकारों से सहित हैं, स्तुत्य नहीं हो सकता। हाँ, वीतराग-सर्वज्ञ जिनेन्द्र देव की वाणी, उनकी प्रतिमा, आचार्य-उपाध्याय-साधु परमेष्ठी और तीर्थस्थानादि वीतरागता-सर्वज्ञता के साधक निमित्त भी स्तुत्य माने गए हैं।
3. जैन-भक्ति व्यक्तिविशेष/नाम को महत्त्व नहीं देती, अपितु वीतरागादि गुणों को विशेष महत्त्व देती है। गुणानुराग का ही नाम भक्ति है।
4. स्तुत्य परमात्मा पूर्णतः राग-द्वेष रहित होने के कारण पूजक-निन्दक का कुछ भी भला-बुरा नहीं करते। पूजक-निन्दक अपने भावों के कारण स्वयमेव वैसा फल प्राप्त करते हैं।
5. परमात्मा के गुणस्तवन रूप भक्ति से भक्त को सहज ही वीतरागतादि उत्तम गुणों की प्राप्ति होती है। यद्यपि वीतरागतादि गुणों की प्राप्ति में भी परमात्मा भक्त की कोई साक्षात् सहायता नहीं करते हैं, उसे किसी प्रकार की कोई प्रेरणा भी नहीं देते, परन्तु भक्त उनके गुणों के स्मरण-चिन्तन से महान् प्रेरणा प्राप्त करता है और फिर पूर्ण वीतरागतादि गुणों की प्राप्ति में भी सफल हो जाता है।
6. जैनधर्म के अनुसार भक्ति का प्रयोजन किसी भी प्रकार का कोई भय या आशा नहीं है, अपितु वीतराग-सर्वज्ञ परमात्मा के प्रति भक्त के हृदय में सहज ही उत्पन्न हुआ ऐसा आदर-बहुमान का भाव है, जो उसे आत्मस्वरूप की पहचान कराकर उसके मोह-राग-द्वेष-अज्ञानादि विकारों के क्षय का हेतु बनता है।
7. जैनधर्म में भक्ति की अधिकता (अन्ध-भक्ति) का नहीं, अपितु उसकी समीचीनता का महत्त्व है (सम्यक् प्रणम्य)। समीचीन भक्ति ही श्रेष्ठ/सार्थक भक्ति कही गयी है तथा समीचीन भक्ति के लिए सर्वप्रथम परमात्मा को स्वरूपतः भलीभाँति जानना आवश्यक कहा है।
8. जैनधर्म के अनुसार परमात्मा की भक्ति-स्तुति का अन्तिम फल स्वयं भी शुद्ध-बुद्ध परमात्मा बन जाना है। अनन्त काल तक भगवान का दास ही बने रहने की कामना जैन-भक्ति में नहीं की जाती है–'तौलों सेऊँ चरण जिनके, मोक्ष जौलों न पाऊँ। अर्थात्–हे जिनेन्द्र ! मैं तब तक आपके चरणों की सेवा करूँ, जब तक कि मोक्ष प्राप्त न कर लूँ।[19]
9. जैनधर्म के अनुसार परमात्मा की भक्ति-स्तुति के अनेक रूप हो सकते हैं– दर्शन, पूजन, नति, विनति, प्रणति, पूजन, जप, तप, ध्यान, स्वाध्याय, इत्यादि।[20] कोई भी भक्त अपने हिसाब से किसी भी रूप के द्वारा परमात्मा के गुणों को पहचानकर उनके प्रति अपने हृदय में आदर-बहुमान का भाव उत्पन्न कर स्वयं भी वीतराग-सर्वज्ञ बनने का पुरुषार्थ कर सकता है।

पाद-टिप्पणी

1. आचार्य पुष्पदन्त-भूतबलि, षट्खण्डागम, गाथा 1
2. आचार्य उमास्वामी, तत्त्वार्थसूत्र, मंगलाचरण
3. देखो– जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग 3, पृष्ठ 197
4. देखो– जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग 3, पृष्ठ 197
5. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, संस्कृत-काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृष्ठ 71 एवं 499
6. डॉ. प्रेमसागर जैन, जैन शोध और समीक्षा, पृष्ठ 40
7. कवि वृन्दावनदास कृत सुमतिनाथ तीर्थंकर पूजा, जयमाला, छन्द 1 व 3
8. प्रकाशक– भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सन् 2003
9. दौलत विलास, पद 28, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
10. जिनसहस्रनाम स्तोत्र, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ 408
11. शुद्ध अर्थात् वीतराग। बुद्ध अर्थात् सर्वज्ञ
12. पं. आशाधर, सागार धर्मामृत, 2/44
13. ''शशि शान्तिकरण तपहरन हेत। स्वयमेव तथा तुम कुशल देत।'' –कविवर दौलतराम, देवस्तुति (दौलतविलास, पृष्ठ)
14. आचार्य समन्तभद्र, स्वयम्भू स्तोत्र, वासुपूज्य स्तवन, छन्द 2
15. आचार्य हेमचन्द्रसूरि, स्याद्वादमर्जरी, प्रस्तावना, पृष्ठ 7
16. कविवर जुगलकिशोर मुख्तार, मेरी भावना, छन्द 1
17. भगवती आराधना, विजयोदया टीका, गाथा 46
18. आचार्य कुन्दकुन्द, प्रवचनसार, गाथा 80
19. शान्तिपाठ भाषा, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ 161
20. धवला, पुस्तक 9, खण्ड 4, भाग 1, सूत्र 55, पृष्ठ 293 में द्वादशांग के स्वाध्याय को भी स्तुति कहा है। यथा– ''बारसंग...। तम्हि जो उवओगो वायण-पुच्छण-परियट्टणाणुवेक्खणसरूवो सो वि थओवयारेण।'' अर्थात् द्वादशांग रूप जिनवाणी में बाँचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा रूप उपयोग लगाना भी उपचार से स्तव (स्तुति) है।

❖❖